हो जाता है। मायावादी तर्क करते हैं कि इस श्लोक में वर्णित द्वैत कृत्रिम है, उसका सम्बन्ध केवल देह से है। किन्तु इस श्लोक से पूर्व ही देहात्मवाद को तिरस्कृत किया जा चुका है। जीवों की देहात्मबुद्धि की निन्दा करके फिर श्रीकृष्ण के लिए देहात्मबुद्धि पर आधारित रुढ़िगत वक्तव्य का प्रतिपादन करना किस प्रकार सम्भव था? अतएव यह सिद्ध होता है तत्त्व के आधार पर भगवान् और जीव में स्वरूप-भेद (द्वैत) नित्य बना रहता है। श्रीरामानुज आदि सभी महान् वैष्णव आचार्यों ने इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। गीता में भी अनेक स्थलों पर उल्लेख है कि यह स्वरूप-ज्ञान केवल भगवद्भक्तों को हो सकता है। जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करते हैं, उनका इस महान् ग्रन्थ में कोई अधिकृत प्रवेश नहीं हो सकता। गीतोपदेश के अभक्तों की प्रवृत्ति मधुपात्र पर मँडराते मधुकरों के समान है। पात्र को खोले बिना मधु का आस्वादन नहीं किया जा सकता। इसी भाँति गीता के मर्म का ज्ञान भक्तों को ही हो सकता है; अन्य कोई गीतामृत का रस नहीं ले सकता, जैसा कि चौथे अध्याय में स्पष्ट किया है। श्रीभगवान् की सत्ता से द्वेष करने वाले तो गीता का स्पर्श तक नहीं कर सकते। अतएव गीता की मायावादी व्याख्या समग्र सत्य की परम भ्रांतिकारक व्याख्या है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने मायावादियों द्वारा रचित भाष्यों के पठन-पाठन का निषेध करते हुए चेतावनी दी है कि जो मायावादी असद्-दर्शन को ग्रहण कर लेता है, वह गीता के सच्चे रहस्य-ज्ञान को हृदयंगम करने की सम्पूर्ण सामर्थ्य खो बैठता है। यदि स्वरूप-भेद (द्वैत) का सम्बन्ध अनुभवगम्य ब्रह्माण्ड से ही होता, तो श्रीभगवान् के लिए स्वयं गीतोपदेश करने का कोई प्रयोजन नहीं था। जीवात्मा तथा श्रीभगवान् में द्वैत शाश्वत् सत्य है और उपरोक्त कथन के अनुसार वेदों में इसकी पुष्टि है।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।१३।।

देहिनः=देहबद्ध जीवात्मा की; **अस्मिन्**=इस; **यथा**=जिस प्रकार; **देहे**=देह में; **कौमारम्**=कुमार; **यौवनम्**=यौवन; **जरा**=वृद्ध अवस्था (होती है); **तथा**=वैसे ही; **देहान्तर**=अन्य शरीर की; **प्राप्तिः**=प्राप्ति होती है; **धीरः**=धीर पुरुष; **तत्र**=उस विषय में; **न**=नहीं; **मुह्यति**=मोहित होता।

अनुवाद

जिस प्रकार बद्धजीव को इस देह में क्रम से कौमार, यौवन तथा वृद्धावस्था की प्राप्ति होती है, उसी भाँति मृत्यु होने पर अन्य देह की प्राप्ति होती है। स्वरूपज्ञानी धीर पुरुष इससे मोहित नहीं होता।।१३।।

तात्पर्य

प्रत्येक जीवात्मा का अपना निजी स्वरूप है। उसके देह में नित्य-निरन्तर परिवर्तन होता रहता है— क्रमशः कौमार, यौवन तथा जरा की अभिव्यक्ति होती है। परन्तु इन सब प्रकार की अवस्थाओं में आत्मा स्वयं परिवर्तनरहित (अनामय) रहता